Kalakankar International Journal of Multidisciplinary Research
Volume 1 | Issue 1 | July 2026
Available online at: https://kijmr.com/

आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रतिबिंबित 'भारतीय ज्ञान परंपरा' और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ. सृष्टि कुशवाहा

सहायक आचार्य (हिंदी) महाविद्यालय- मदनमोहन मालवीय पी.जी कॉलेज कालाकांकर(प्रतापगढ़)

Email ID: srishti.kushwaha208@gmail.com

Received: 02 July 2026 | **Accepted:** 15 July 2026 | **Published:** 25 July 2026

Abstract (सारांश)

भारतीय ज्ञान परंपरा किसी एक ग्रंथ, धर्म, दर्शन अथवा ऐतिहासिक काल तक सीमित अवधारणा नहीं है। इसका निर्माण वैदिक, उपनिषदिक, बौद्ध, जैन, लोकायत, भक्ति, सूफी, लोक, आदिवासी और आधुनिक वैज्ञानिक-मानवतावादी विचारधाराओं के दीर्घकालीन संवाद से हुआ है। आधुनिक हिंदी साहित्य ने इस बहुआयामी ज्ञान-परंपरा को केवल संरक्षित ही नहीं किया, बल्कि उसका पुनर्पाठ, परीक्षण और पुनर्सृजन भी किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के राष्ट्रीय-सामाजिक जागरण से लेकर प्रेमचंद के लोकजीवन, जयशंकर प्रसाद के दार्शनिक चिंतन, निराला के विद्रोही मानवतावाद, महादेवी वर्मा की करुणा, रामधारी सिंह 'दिनकर' के मिथकीय पुनर्पाठ, फणीश्वरनाथ रेणु की आंचलिक चेतना, अज्ञेय और मुक्तिबोध के आत्मसंघर्ष तथा दलित, स्त्री एवं आदिवासी लेखन तक भारतीय ज्ञान परंपरा अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है।प्रस्तुत शोध-लेख गुणात्मक और व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों और चयनित रचनाओं का पाठ-विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा साहित्य में किन मूल्यों, विचारों और जीवन-दृष्टियों के रूप में प्रकट होती है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिंदी साहित्य ने परंपरा को जड़ और अपरिवर्तनीय व्यवस्था के रूप में स्वीकार नहीं किया। उसने लोकमंगल, करुणा, सह-अस्तित्व, प्रकृति-सम्मान, सत्य, न्याय, कर्म, आत्मसंघर्ष और सामुदायिकता जैसे मूल्यों को ग्रहण करते हुए जाति, लैंगिक असमानता, अंधविश्वास, कर्मकांड और सामाजिक वर्चस्व की आलोचना भी की। वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट, सामाजिक विखंडन, उपभोक्तावाद, सांप्रदायिक तनाव, मूल्यहीनता और शिक्षा के औपनिवेशिक प्रभाव के संदर्भ में इस साहित्यिक ज्ञान-संपदा का महत्त्व और बढ़ जाता है। लेख का निष्कर्ष है कि भारतीय ज्ञान परंपरा की सार्थकता उसके गौरवगान में नहीं, बल्कि उसके विवेकपूर्ण, समावेशी और समकालीन पुनर्पाठ में निहित है।

मुख्य शब्द: *भारतीय ज्ञान परंपरा, आधुनिक हिंदी साहित्य, लोकज्ञान, सांस्कृतिक चेतना, मानवतावाद, सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय दृष्टि।*

1. प्रस्तावना

किसी भी समाज की ज्ञान-परंपरा केवल पुस्तकों और शास्त्रों में सुरक्षित सूचनाओं का संग्रह नहीं होती। वह उस समाज के जीवनानुभव, प्रकृति से संबंध, श्रम, नैतिकता, भाषा, दर्शन, कलाओं, लोकविश्वासों, वैज्ञानिक उपलब्धियों और सामाजिक संघर्षों से निर्मित होती है। भारतीय संदर्भ में ज्ञान का विकास हजारों वर्षों के संवाद, मतभेद, समन्वय और पुनर्व्याख्या के माध्यम से हुआ है। वेदों और उपनिषदों के साथ-साथ बौद्ध त्रिपिटक, जैन आगम, लोकायत दर्शन, सिद्ध-नाथ परंपरा, भक्ति-साहित्य, सूफी चिंतन, लोककथाएँ, जनजातीय स्मृतियाँ और क्षेत्रीय भाषाओं में संरक्षित अनुभव भी भारतीय ज्ञान-परंपरा के महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल अतीत की उपलब्धि कहना उचित नहीं होगा। परंपरा तभी जीवित रहती है जब प्रत्येक पीढ़ी अपने समय की आवश्यकताओं के अनुसार उसका पुनर्पाठ करती है। आधुनिक हिंदी साहित्य ने यही कार्य किया। उसने प्राचीन

This is an open access article under the Creative Commons Attribution-Non-Commercial 4.0 International License.
© The Author(s) 2026. KIJMR Published by Kalakankar Publishing.

मिथकों, ऐतिहासिक स्मृतियों, धार्मिक प्रतीकों और लोकानुभवों को आधुनिक राष्ट्रीयता, सामाजिक न्याय, स्त्री-अस्मिता, वर्ग-संघर्ष, लोकतंत्र और वैज्ञानिक विवेक से जोड़कर देखा।

साहित्य अकादेमी की 'भारतीय साहित्य का इतिहास' परियोजना भारतीय साहित्यिक गतिविधियों को ऋग्वैदिक काल से वर्तमान तक समझने का प्रयास करती है। यह तथ्य भारतीय साहित्य और ज्ञान के बीच दीर्घकालीन निरंतरता की ओर संकेत करता है। परंतु इस निरंतरता का अर्थ यह नहीं कि भारतीय परंपरा एकरूप और निर्विवाद रही है। उसमें वैदिक और अवैदिक, शास्त्रीय और लोक, आस्तिक और नास्तिक, आध्यात्मिक और भौतिकवादी विचारधाराएँ समानांतर रूप से विकसित हुईं।

आधुनिक हिंदी साहित्य इसी बहुल परंपरा का आधुनिक संवेदनात्मक दस्तावेज है। वह अतीत को वर्तमान पर आरोपित नहीं करता, बल्कि उससे प्रश्न करता है। वह उपयोगी जीवन-मूल्यों को ग्रहण करते हुए उन व्यवस्थाओं का प्रतिरोध भी करता है जिन्होंने मनुष्य की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा को बाधित किया। अतः आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन सांस्कृतिक गौरव की खोज मात्र नहीं, बल्कि भारतीय समाज के आत्मसंघर्ष और आत्मालोचन को समझने का माध्यम भी है।

2. भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा

भारतीय ज्ञान परंपरा को सामान्यतः दर्शन, योग, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, वास्तु, साहित्य, व्याकरण, संगीत, नाट्य, कृषि और पर्यावरण संबंधी प्राचीन भारतीय ज्ञान से जोड़ा जाता है। यह परिभाषा उपयोगी अवश्य है, लेकिन पूर्ण नहीं। ज्ञान केवल विशेषज्ञ शास्त्रों में नहीं होता; खेती, जल-संरक्षण, वनस्पतियों की पहचान, पशुपालन, लोकचिकित्सा, मौसम के अनुमान, भोजन-निर्माण, हस्तकला, पारिवारिक संबंध और सामुदायिक जीवन में निहित व्यावहारिक अनुभव भी ज्ञान के रूप हैं।

भारतीय ज्ञान-दृष्टि की एक प्रमुख विशेषता मनुष्य, प्रकृति और समाज को परस्पर संबद्ध इकाइयों के रूप में देखना है। उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म की एकता, बौद्ध दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद, जैन दर्शन में अनेकांतवाद, योग में शरीर-मन का संतुलन और भक्ति-साहित्य में मनुष्य की समानता इसी समग्रता के विभिन्न रूप हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रश्नोत्तर, शास्त्रार्थ, संवाद और आत्मपरीक्षण की भी समृद्ध परंपरा रही है।

यह परंपरा किसी एक धार्मिक समुदाय की संपत्ति नहीं है। इसमें वैदिक विचारों के साथ बुद्ध और महावीर की करुणा-अहिंसा, चार्वाक का भौतिकवाद, कबीर का निर्भीक विवेक, नानक की समन्वयशीलता, सूफियों का प्रेम, आदिवासी समुदायों का प्रकृति-बोध और लोकजीवन का अनुभव सम्मिलित है। भारतीय भाषा परिषद की पत्रिका 'वागर्थ' में प्रकाशित समकालीन विमर्श भी भारतीय ज्ञान परंपरा को वैदिक-अवैदिक, लोक-शास्त्र, आस्तिक-नास्तिक तथा विभिन्न भाषायी और क्षेत्रीय परंपराओं के संवाद के रूप में देखने पर बल देता है।

ज्ञान-परंपरा को केवल गौरवमय अतीत के रूप में प्रस्तुत करने से उसकी आलोचनात्मक शक्ति समाप्त हो सकती है। भारत में ज्ञान के साथ जाति-आधारित प्रतिबंध, स्त्रियों की शिक्षा पर नियंत्रण, अंधविश्वास और कर्मकांड की परंपराएँ भी रही हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य ने इन अंतर्विरोधों को सामने लाकर भारतीय ज्ञान परंपरा को अधिक लोकतांत्रिक और मानवीय बनाया।

3. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. आधुनिक हिंदी साहित्य में अभिव्यक्त भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख स्वरूपों की पहचान करना।
2. हिंदी साहित्य की विभिन्न धाराओं में परंपरा और आधुनिकता के संबंध का विश्लेषण करना।
3. लोकमंगल, करुणा, प्रकृति, नैतिकता, सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा से जुड़े साहित्यिक मूल्यों का अध्ययन करना।
4. दलित, स्त्री, आदिवासी और आंचलिक साहित्य द्वारा भारतीय ज्ञान की अवधारणा में किए गए विस्तार को समझना।
5. वर्तमान सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता का परीक्षण करना।

4. शोध-पद्धति

यह अध्ययन गुणात्मक, वर्णनात्मक और व्याख्यात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है। इसमें आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रमुख काव्य, कथा, निबंध और आत्मकथात्मक रचनाओं को प्राथमिक सामग्री के रूप में ग्रहण किया गया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, प्रेमचंद, रामधारी सिंह 'दिनकर', अज्ञेय, मुक्तिबोध, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, श्रीलाल शुक्ल, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती और ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे रचनाकारों के साहित्य का विषयगत अध्ययन किया गया है।

विश्लेषण के प्रमुख आधार परंपरा और आधुनिकता, लोक और शास्त्र, मनुष्य और प्रकृति, धर्म और नैतिकता, सामाजिक समानता, स्त्री-अनुभव, दलित चेतना, राष्ट्रीयता तथा सांस्कृतिक बहुलता हैं। अध्ययन साहित्य-आधारित है; इसमें किसी प्रकार के काल्पनिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण या सांख्यिकीय परिणाम का उपयोग नहीं किया गया है।

5. हिंदी नवजागरण में ज्ञान परंपरा

आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ भारतीय समाज के उस संक्रमणकाल में हुआ जब औपनिवेशिक शासन, पश्चिमी शिक्षा, मुद्रण-प्रौद्योगिकी और राष्ट्रीय चेतना के कारण सामाजिक जीवन तेजी से बदल रहा था। इस समय भारतीय समाज के सामने दोहरी चुनौती थी—एक ओर औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति और दूसरी ओर आंतरिक सामाजिक कुरीतियों का सुधार।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक स्मृति का उपयोग राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए किया। उनकी 'भारत-दुर्दशा' में पराधीन भारत की पीड़ा है, जबकि 'अंधेर नगरी' शासन, न्याय और सामाजिक विवेक की विडंबनाओं पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करती है। भारतेंदु के लिए परंपरा निष्क्रिय अतीत नहीं थी; वह वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझने का साधन थी।

भारतेंदु मंडल के लेखकों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इतिहास, विज्ञान, समाज-सुधार, भाषा और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर सामग्री प्रस्तुत की। आधुनिक हिंदी गद्य के विकास ने ज्ञान को सीमित शिक्षित वर्ग से निकालकर व्यापक पाठक-समुदाय तक पहुँचाया। मातृभाषा में ज्ञान-प्रसार स्वयं भारतीय ज्ञान परंपरा के लोकतंत्रीकरण का महत्त्वपूर्ण चरण था।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में 'सरस्वती' पत्रिका ने भाषा-सुधार, सामाजिक चेतना, विज्ञान, इतिहास और आर्थिक चिंतन को साहित्य से जोड़ा। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती', 'साकेत' और 'यशोधरा' जैसी रचनाओं में इतिहास और मिथक को आधुनिक राष्ट्रीय एवं नैतिक चेतना से संबद्ध किया। 'साकेत' में उर्मिला जैसे अपेक्षाकृत उपेक्षित पात्र को केंद्र में लाकर उन्होंने रामकथा की परंपरा को नया मानवीय अर्थ प्रदान किया। इसी प्रकार 'यशोधरा' बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण को पीछे छूट गई स्त्री के अनुभव से देखने का अवसर देती है।

इस काल में भारतीय ज्ञान परंपरा राष्ट्रीय स्वाभिमान का स्रोत बनी, परंतु साहित्यकारों ने यह भी समझा कि वास्तविक राष्ट्रीय उत्थान सामाजिक सुधार, शिक्षा, स्त्री-जागरण और आर्थिक आत्मनिर्भरता के बिना संभव नहीं है।

6. छायावाद और भारतीय दार्शनिक चेतना

छायावादी साहित्य में व्यक्तित्व की स्वतंत्रता, आत्म-अन्वेषण, प्रकृति, सौंदर्य, रहस्य और मानवीय संवेदना प्रमुख हैं। इन प्रवृत्तियों के भीतर उपनिषदिक आत्मचिंतन, बौद्ध करुणा, भक्ति की भावनात्मकता और भारतीय सौंदर्य-दृष्टि के प्रभाव देखे जा सकते हैं।

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' भारतीय मिथक का आधुनिक दार्शनिक पुनर्सृजन है। मनु, श्रद्धा और इड़ा केवल पौराणिक पात्र नहीं रहते; वे मनुष्य के मन, भावना और बुद्धि की प्रतीकात्मक शक्तियाँ बन जाते हैं। प्रसाद मनुष्य के विकास के लिए बुद्धि और भावना के संतुलन की आवश्यकता बताते हैं। एकांगी बुद्धिवाद या अनियंत्रित भावुकता दोनों को वे अपूर्ण मानते हैं। यह समन्वयवादी दृष्टि भारतीय दर्शन की उस परंपरा से जुड़ती है जिसमें जीवन के विभिन्न पक्षों को संतुलित करने पर बल दिया गया है।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में अतीत का उपयोग वर्तमान राष्ट्रीय चेतना को मजबूत करने के लिए हुआ है। किंतु उनका इतिहास केवल वीरता का आख्यान नहीं है; उसमें राजनीतिक नैतिकता, त्याग, कर्तव्य और सांस्कृतिक आत्मसम्मान के प्रश्न भी उपस्थित हैं। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'राम की शक्तिपूजा' में राम को सर्वशक्तिमान देवता के रूप में नहीं, बल्कि संघर्षशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया। विजय प्राप्त करने से पूर्व राम को निराशा, आत्मसंशय, साधना और शक्ति-संचय की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। इस प्रकार मिथक आधुनिक मनुष्य के संघर्ष का प्रतीक बन जाता है। निराला की 'तुलसीदास' कविता में कवि का सांस्कृतिक उत्तरदायित्व व्यक्त हुआ है, जबकि 'वह तोड़ती पत्थर' और 'भिक्षुक' जैसी कविताएँ श्रमशील और वंचित मनुष्य की गरिमा को साहित्य के केंद्र में लाती हैं।

महादेवी वर्मा की कविता में प्रकृति, करुणा, आत्मानुभूति और विश्व-मैत्री की गहरी चेतना दिखाई देती है। उनके गद्य, विशेषकर 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में स्त्री-जीवन की सामाजिक सीमाओं का विवेकपूर्ण विश्लेषण मिलता है। 'मेरा परिवार' में मनुष्य और पशु-पक्षियों के बीच सह-अस्तित्व की जो संवेदना व्यक्त हुई है, वह भारतीय अहिंसा और करुणा की परंपरा को आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता से जोड़ती है।

7. प्रेमचंद का साहित्य: लोकज्ञान और सामाजिक नैतिकता

प्रेमचंद का साहित्य भारतीय ग्रामीण जीवन, लोकव्यवहार और सामाजिक संरचना का विस्तृत मानवीय दस्तावेज है। उनके उपन्यासों और कहानियों में किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, वृद्ध, बच्चे और पशु तक संवेदनशील पात्रों के रूप में उपस्थित हैं। उन्होंने भारतीय जीवन-मूल्यों को स्वीकार करते हुए जातिवाद, पाखंड, जमींदारी, आर्थिक शोषण और धार्मिक आडंबर का विरोध किया।

'गोदान' में होरी केवल एक गरीब किसान नहीं है; वह उस कृषक-सभ्यता का प्रतिनिधि है जिसमें भूमि, पशु, परिवार और सामाजिक प्रतिष्ठा परस्पर जुड़े हुए हैं। होरी के अनुभवों के माध्यम से खेती, ऋतु, ऋण, श्रम, पारिवारिक संबंध और ग्रामीण नैतिकता का ज्ञान सामने आता है। किंतु यही उपन्यास बताता है कि परंपरागत सामुदायिक व्यवस्था किस प्रकार आर्थिक और जातिगत शोषण का माध्यम भी बन सकती है।

'पंच परमेश्वर' में न्याय को व्यक्तिगत मित्रता से ऊपर रखा गया है। 'ईदगाह' में बालक हामिद का त्याग भारतीय परिवार और करुणा की सहज नैतिकता को व्यक्त करता है। 'सद्गति' जातिगत अमानवीयता का कठोर उद्घाटन करती है, जबकि 'कफन' सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण मनुष्य की संवेदना के क्षरण को सामने लाती है।

प्रेमचंद ने धर्म को कर्मकांड के स्थान पर न्याय, करुणा और उत्तरदायित्व के रूप में देखने का आग्रह किया। उनके साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा का अर्थ सामाजिक यथार्थ से पलायन नहीं, बल्कि उसके अन्यायपूर्ण पक्षों को बदलना है। इस कारण प्रेमचंद का साहित्य भारतीय परंपरा का संरक्षण करते हुए उसकी नैतिक समीक्षा भी करता है।

8. प्रगतिशील साहित्य और लोकमंगल की अवधारणा

प्रगतिशील साहित्य ने साहित्य को सामाजिक परिवर्तन, वर्गीय समानता और जनजीवन से जोड़ा। प्रथम दृष्टि में प्रगतिशील विचारधारा को पश्चिमी मार्क्सवादी प्रभाव से संबद्ध माना जाता है, किंतु उसका लोकमंगल, श्रम-सम्मान और सामाजिक न्याय से जुड़ा पक्ष भारतीय संत और लोक परंपराओं से भी संवाद करता है।

नागार्जुन की कविता में ग्रामीण जीवन, किसान, अकाल, राजनीतिक व्यंग्य और लोकभाषा का सशक्त रूप मिलता है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ अभिजात संरचना के स्थान पर जनता की बोलचाल, व्यंग्य और प्रतिरोध से शक्ति प्राप्त करती है। त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और भवानीप्रसाद मिश्र ने भी लोकभाषा, श्रम और प्रकृति को साहित्यिक गरिमा प्रदान की।

रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'कुरुक्षेत्र' महाभारत के युद्ध के माध्यम से हिंसा, न्याय और शांति के आधुनिक प्रश्नों की परीक्षा करती है। इसमें युद्ध की वीरता के साथ उसके मानवीय परिणामों पर भी विचार किया गया है। 'रश्मिरथी' में कर्ण के चरित्र के माध्यम से जन्म-

आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रतिभा के बीच टकराव सामने आता है। कर्ण की उपेक्षा वर्ण और वंश पर आधारित व्यवस्था की नैतिक सीमा को उजागर करती है। इस प्रकार महाभारत का पुनर्पाठ आधुनिक सामाजिक समानता के प्रश्न से जुड़ जाता है।

प्रगतिशील साहित्य का महत्त्व इस बात में है कि उसने ज्ञान को शास्त्रीय अभिजातता से निकालकर श्रमशील जनता के अनुभव में खोजा। किसान का कृषि-ज्ञान, मजदूर का कौशल, स्त्री का घरेलू अनुभव और लोकभाषा की अभिव्यक्ति भी ज्ञान की वैध विधाएँ मानी गईं।

9. प्रयोगवाद, नई कविता और आत्मज्ञान

प्रयोगवादी तथा नई कविता के रचनाकारों ने व्यक्ति के भीतर उत्पन्न अकेलेपन, भय, असुरक्षा, आत्मसंघर्ष और आधुनिक सभ्यता की जटिलताओं को अभिव्यक्ति दी। यहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा प्रत्यक्ष धार्मिक प्रतीकों के रूप में कम और आत्मपरीक्षण, सत्य की खोज तथा अस्तित्व के प्रश्नों के रूप में अधिक दिखाई देती है।

अज्ञेय के साहित्य में व्यक्ति की स्वतंत्रता और आत्मान्वेषण केंद्रीय हैं। उनकी रचनाएँ इस विचार पर बल देती हैं कि सत्य किसी बाहरी व्यवस्था द्वारा अंतिम रूप से प्रदान नहीं किया जा सकता; व्यक्ति को अनुभव, प्रश्न और आत्मसंघर्ष के माध्यम से उसे खोजना पड़ता है। यह दृष्टि उपनिषदिक प्रश्नाकुलता और बौद्ध आत्मपरीक्षण की आधुनिक अभिव्यक्ति के रूप में देखी जा सकती है।

गजानन माधव मुक्तिबोध की कविता में आत्मालोचन अत्यंत तीव्र है। 'अँधेरे में' का नायक केवल सामाजिक व्यवस्था से प्रश्न नहीं करता, बल्कि अपनी बौद्धिक निष्क्रियता और समझौतापरस्ती की भी परीक्षा करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान को आत्मपरिवर्तन से जोड़ा गया है; मुक्तिबोध इस परंपरा को आधुनिक राजनीतिक और नैतिक संकट से जोड़ते हैं। शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती और केदारनाथ सिंह की रचनाओं में भी आधुनिक संवेदना और सांस्कृतिक स्मृति के विभिन्न रूप मिलते हैं। केदारनाथ सिंह के यहाँ पेड़, पानी, खेत, पशु, पक्षी और स्थानीय भाषा केवल काव्य-वस्तुएँ नहीं हैं; वे मनुष्य की सांस्कृतिक और पर्यावरणीय पहचान के आधार हैं।

10. आंचलिक साहित्य और लोकज्ञान

फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' आधुनिक हिंदी साहित्य में लोकज्ञान का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें गाँव की बोली, गीत, कृषि, लोकचिकित्सा, उत्सव, जातीय संबंध, राजनीतिक जागरण और स्थानीय विश्वासों का विस्तृत चित्र मिलता है। रेणु लोकजीवन का रोमानीकरण नहीं करते। वे उसकी सामुदायिकता और सांस्कृतिक समृद्धि के साथ गरीबी, बीमारी, अंधविश्वास और जातिगत विभाजन भी दिखाते हैं।

आंचलिक साहित्य यह बताता है कि ज्ञान का निर्माण केवल विश्वविद्यालयों और महानगरों में नहीं होता। ग्रामीण और जनजातीय समुदायों ने मिट्टी, बीज, जल, वनस्पति, मौसम और पशुओं से संबंधित अनुभव पीढ़ियों तक सुरक्षित रखे हैं। यह ज्ञान मौखिक कथाओं, गीतों, कहावतों, अनुष्ठानों और दैनिक व्यवहार में जीवित रहता है।

कृष्णा सोबती के 'ज़िंदगीनामा' में पंजाब के ग्रामीण समाज की बहुधार्मिक और बहुभाषिक संस्कृति का जीवंत रूप मिलता है। लोकस्मृतियाँ, खेती-किसानी और सामुदायिक संबंध इतिहास के औपचारिक विवरणों से अलग प्रकार का सामाजिक ज्ञान निर्मित करते हैं। दूसरी ओर श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' ग्रामीण और अर्द्धशहरी संस्थाओं के विघटन को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास बताता है कि परंपरागत सामुदायिक संरचनाएँ और आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थाएँ दोनों भ्रष्ट स्वार्थों का शिकार हो सकती हैं। इस प्रकार साहित्य परंपरा की शक्ति के साथ उसकी विकृतियों की पहचान भी करता है।

11. दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श द्वारा ज्ञान का विस्तार

भारतीय ज्ञान परंपरा की चर्चा लंबे समय तक मुख्यतः संस्कृत ग्रंथों, उच्चवर्णीय रचनाकारों और औपचारिक धार्मिक-दर्शनिक स्रोतों के आधार पर होती रही। दलित, स्त्री और आदिवासी लेखन ने इस सीमित दृष्टि को चुनौती दी। इन विमर्शों ने प्रश्न उठाया कि

ज्ञान का निर्माण किसने किया, उसे लिखने का अधिकार किसे मिला और किन समुदायों के अनुभव इतिहास तथा साहित्य से बाहर रखे गए।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' जातिगत अपमान, श्रम और शिक्षा के संघर्ष का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करती है। इसमें दलित जीवन का वह ज्ञान सामने आता है जो मुख्यधारा के इतिहास और शास्त्रों में अनुपस्थित रहा। तुलसीराम की 'मुर्दहिया' भी ग्रामीण दलित समाज, भूख, लोकजीवन और शिक्षा की आकांक्षा को भीतर से समझने का अवसर देती है। ये रचनाएँ भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल गौरव की परंपरा न मानकर वंचित समुदायों के संघर्ष और प्रतिरोध की परंपरा के रूप में देखने की माँग करती हैं। स्त्री लेखन ने घरेलू जीवन, मातृत्व, देह, विवाह, श्रम और स्त्री-स्वतंत्रता से जुड़े अनुभवों को ज्ञान की श्रेणी में स्थापित किया। महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान और मैत्रेयी पुष्पा जैसी रचनाकारों ने स्त्री की उस अनुभूति को स्वर दिया जिसे पुरुष-केंद्रित साहित्यिक परंपरा में पर्याप्त स्थान नहीं मिला था।

आदिवासी कविता और कथा-साहित्य ने जल, जंगल, जमीन और सामुदायिक जीवन से जुड़े ज्ञान को केंद्र में रखा। आदिवासी दृष्टि में प्रकृति केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि जीवन की सहभागी सत्ता है। यह दृष्टि वर्तमान पर्यावरणीय संकट में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार आधुनिक विमर्श भारतीय ज्ञान परंपरा का निषेध नहीं करते; वे उसे अधिक समावेशी, लोकतांत्रिक और बहुस्वरीय बनाते हैं।

12. भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाओं, कला, संस्कृति, नैतिक शिक्षा और भारतीय ज्ञान प्रणालियों को शिक्षा से जोड़ने पर बल दिया गया है। शिक्षा मंत्रालय ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को शिक्षा और अनुसंधान में प्रोत्साहित करने के लिए पृथक पहल विकसित की है। भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रभाग उच्च शिक्षा विभाग से संबद्ध है और जून 2020 से अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के प्रशासनिक सहयोग से कार्य कर रहा है।

आधुनिक हिंदी साहित्य इस नीतिगत उद्देश्य के लिए महत्त्वपूर्ण शैक्षिक सामग्री प्रदान कर सकता है। साहित्य के माध्यम से विद्यार्थी केवल ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त नहीं करते, बल्कि नैतिक दुविधाओं, सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक विविधता और मानवीय संवेदना को अनुभवात्मक रूप में समझते हैं।

किन्तु भारतीय ज्ञान परंपरा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने का अर्थ केवल प्राचीन उपलब्धियों की सूची याद कराना नहीं होना चाहिए। विद्यार्थियों को यह भी समझाया जाना चाहिए कि प्रत्येक परंपरा समय के साथ विकसित होती है और उसके भीतर मतभेद एवं अंतर्विरोध होते हैं। प्रेमचंद, निराला, महादेवी, रेणु और दलित साहित्य का अध्ययन परंपरा के ऐसे ही आलोचनात्मक और मानवीय पुनर्पाठ को संभव बनाता है।

13. वर्तमान समय में प्रासंगिकता

13.1 सांस्कृतिक पहचान और भाषायी आत्मनिर्भरता

वैश्वीकरण और डिजिटल संचार के कारण विश्व की संस्कृतियाँ तेजी से एक-दूसरे के संपर्क में आई हैं। यह संपर्क ज्ञान-विस्तार का अवसर है, किंतु स्थानीय भाषाओं और स्मृतियों के क्षरण का खतरा भी उत्पन्न करता है। आधुनिक हिंदी साहित्य पाठक को अपनी भाषा, इतिहास और सामाजिक अनुभव से जोड़ता है। मातृभाषा में ज्ञान और साहित्य का विकास सांस्कृतिक आत्मविश्वास को मजबूत करता है।

13.2 सामाजिक समरसता और बहुलता

सांप्रदायिक तनाव और पहचान-आधारित संघर्षों के समय कबीर की निर्भीकता, प्रेमचंद का मानवतावाद, भीष्म साहनी के 'तमस' की त्रासदी और कृष्णा सोबती की बहुल सांस्कृतिक दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक हैं। ये रचनाएँ बताती हैं कि भारतीय समाज की शक्ति उसकी विविधता और संवाद में है, न कि किसी एक पहचान के वर्चस्व में।

13.3 पर्यावरणीय संकट

जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, जल-संकट और जैवविविधता के विनाश के संदर्भ में भारतीय साहित्य की प्रकृति-दृष्टि नया महत्त्व प्राप्त करती है। महादेवी वर्मा की पशु-पक्षियों के प्रति करुणा, रेणु का ग्रामीण परिवेश, नागार्जुन की अकाल संबंधी कविताएँ और आदिवासी साहित्य का प्रकृति-बोध मनुष्य-केंद्रित विकास की सीमाओं को पहचानने में सहायता करते हैं।

13.4 सामाजिक न्याय

जाति, वर्ग और लैंगिक असमानता आज भी समाप्त नहीं हुई है। प्रेमचंद की 'सद्गति', निराला की श्रमजीवी चेतना, दिनकर का कर्ण, वाल्मीकि की 'जूठन' और स्त्री लेखन वर्तमान समाज को समानता और गरिमा के प्रश्नों से जोड़ते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा तभी जीवित और सार्थक मानी जा सकती है जब उसमें समाज के अंतिम व्यक्ति का अनुभव भी सम्मिलित हो।

13.5 नैतिक एवं सार्वजनिक जीवन

भ्रष्टाचार, राजनीतिक अवसरवाद और उपभोक्तावादी मानसिकता के बीच 'अंधेर नगरी', 'राग दरबारी' और मुक्तिबोध की कविताएँ आज भी प्रासंगिक हैं। ये रचनाएँ व्यक्ति को बाहरी व्यवस्था के साथ अपनी नैतिक जिम्मेदारी की जाँच करने के लिए प्रेरित करती हैं। सत्य, न्याय, त्याग और लोकहित जैसे मूल्य केवल धार्मिक उपदेश नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक जीवन की आवश्यकता हैं।

13.6 मानसिक संतुलन और समग्र जीवन-दृष्टि

प्रतिस्पर्धा, अकेलापन और डिजिटल निर्भरता से उत्पन्न मानसिक दबाव आधुनिक जीवन की गंभीर समस्या है। छायावादी साहित्य का आत्मचिंतन, प्रकृति से संबंध, करुणा और भाव-बुद्धि संतुलन मनुष्य को अधिक समग्र जीवन-दृष्टि प्रदान कर सकता है। साहित्य समस्याओं का चिकित्सकीय समाधान नहीं देता, लेकिन वह आत्मसंवाद, संवेदनशीलता और भावनात्मक समझ विकसित करता है।

14. प्रमुख चुनौतियाँ

भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन में सबसे बड़ी चुनौती उसका एकांगी महिमामंडन है। प्रत्येक प्राचीन विश्वास को वैज्ञानिक घोषित करना ज्ञान के प्रति अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। किसी परंपरागत विचार की वर्तमान उपयोगिता प्रमाण, तर्क और सामाजिक हित के आधार पर निर्धारित होनी चाहिए।

दूसरी चुनौती भारतीय परंपरा को केवल संस्कृत और धार्मिक ग्रंथों तक सीमित करना है। इससे लोक, बौद्ध, जैन, सूफी, दलित, स्त्री, आदिवासी और क्षेत्रीय भाषाओं की ज्ञान-संपदा उपेक्षित हो जाती है।

तीसरी चुनौती चयनात्मक उपयोग की है। प्राचीन साहित्य से केवल गौरवपूर्ण प्रसंग लेकर जाति, स्त्री-असमानता और सामाजिक वर्चस्व से जुड़े प्रश्नों को छोड़ देना बौद्धिक ईमानदारी के विरुद्ध है।

चौथी चुनौती परंपरा और आधुनिक विज्ञान को परस्पर विरोधी मानने की है। आधुनिक हिंदी साहित्य का अनुभव बताता है कि भारतीय और वैश्विक ज्ञान के बीच संवाद संभव है। उपयोगी परंपरागत ज्ञान का वैज्ञानिक परीक्षण होना चाहिए तथा आधुनिक ज्ञान को स्थानीय सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ा जाना चाहिए।

15. निष्कर्ष

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा किसी स्थिर और एकरूप धरोहर के रूप में प्रतिबिंबित नहीं होती। वह निरंतर संवाद, संघर्ष, आत्मालोचन और पुनर्सृजन की प्रक्रिया के रूप में सामने आती है। भारतेंदु ने सांस्कृतिक स्मृति को राष्ट्रीय जागरण से जोड़ा; द्विवेदी युग ने ज्ञान-विज्ञान और भाषा-विकास को सामाजिक सुधार का माध्यम बनाया; प्रसाद ने मिथक को दार्शनिक मनोविज्ञान में रूपांतरित किया; निराला ने परंपरा को संघर्षशील मानवतावाद से जोड़ा; महादेवी ने करुणा और स्त्री-चेतना को विस्तार दिया; प्रेमचंद ने लोकजीवन के भीतर न्याय और असमानता के प्रश्न उठाए; दिनकर ने महाकाव्यीय पात्रों के माध्यम से आधुनिक नैतिक

दुविधाओं की समीक्षा की और रेणु ने लोकज्ञान को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की। दलित, स्त्री और आदिवासी लेखन ने स्पष्ट किया कि भारतीय ज्ञान परंपरा का वास्तविक विस्तार तभी होगा जब उसमें उन समुदायों की स्मृतियाँ और अनुभव सम्मिलित हों जिन्हें लंबे समय तक ज्ञान-व्यवस्था से बाहर रखा गया। इस प्रकार आधुनिक हिंदी साहित्य परंपरा का संरक्षक होने के साथ उसका आलोचक भी है।

वर्तमान समय में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता सांस्कृतिक गौरव के घोषणापत्र में नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय संतुलन, भाषायी आत्मनिर्भरता, नैतिक सार्वजनिक जीवन और सांस्कृतिक बहुलता के निर्माण में है। परंपरा का उद्देश्य मनुष्य को अतीत में लौटाना नहीं, बल्कि अतीत के अनुभवों से सीखते हुए अधिक न्यायपूर्ण और संवेदनशील भविष्य का निर्माण करना होना चाहिए। भारतीय ज्ञान परंपरा को जीवित रखने का सर्वोत्तम माध्यम उसका विवेकपूर्ण अध्ययन है—जहाँ श्रद्धा के साथ प्रश्न, गौरव के साथ आत्मालोचन और स्मृति के साथ नवीनता का समन्वय हो। आधुनिक हिंदी साहित्य इसी संतुलित, बहुल और मानवीय भारतीय चेतना का सशक्त प्रतिनिधि है।

संदर्भ सूची

[1]. अज्ञेय, स. ही. वा. (1941). शेखर: एक जीवनी. सरस्वती प्रेस।

[2]. गुप्त, मैथिलीशरण. (1912). भारत-भारती. साहित्य सदन।

[3]. गुप्त, मैथिलीशरण. (1931). साकेत. साहित्य सदन।

[4]. दिनकर, रामधारी सिंह. (1946). कुरुक्षेत्र. उदयाचल प्रकाशन।

[5]. दिनकर, रामधारी सिंह. (1952). रश्मिरथी. लोकभारती प्रकाशन।

[6]. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (1936). अनामिका. भारती भंडार।

[7]. प्रसाद, जयशंकर. (1936). कामायनी. भारती भंडार।

[8]. प्रेमचंद. (1936). गोदान. सरस्वती प्रेस।

[9]. मुक्तिबोध, गजानन माधव. (1964). चाँद का मुँह टेढ़ा है. भारतीय ज्ञानपीठ।

[10]. महादेवी वर्मा. (1942). श्रृंखला की कड़ियाँ. लोकभारती प्रकाशन।

[11]. रेणु, फणीश्वरनाथ. (1954). मैला आँचल. राजकमल प्रकाशन।

[12]. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (1997). जूठन. राधाकृष्ण प्रकाशन।

[13]. शुक्ल, रामचंद्र. (1929). हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा।

[14]. शुक्ल, श्रीलाल. (1968). राग दरबारी. राजकमल प्रकाशन।

[15]. साहनी, भीष्म. (1974). तमस. राजकमल प्रकाशन।

[16]. सोबती, कृष्णा. (1979). ज़िंदगीनामा. राजकमल प्रकाशन।

[17]. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1942). कबीर. हिंदी ग्रंथ रत्नाकर।

[18]. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1952). हिंदी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन।

[19]. शर्मा, रामविलास. (1954). भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ. राजकमल प्रकाशन।

[20]. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार।

[21]. भारतीय भाषा परिषद. (2026). भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक हिंदी साहित्य. वागर्थ।

[22]. साहित्य अकादेमी. (प्रकाशन वर्ष अनुपलब्ध). भारतीय साहित्य का इतिहास परियोजना. साहित्य अकादेमी।

Cite this Article:

सृष्टि कुशवाहा (2026). आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रतिबिंबित 'भारतीय ज्ञान परंपरा' और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता. Kalakankar International Journal of Multidisciplinary Research, 1(1), 11–18.

Journal URL: *https://kijmr.com/*

Disclaimer and Publisher's Note: *The views, interpretations, and conclusions expressed in this article are entirely those of the author(s). The publisher and editors do not accept responsibility for any inaccuracies, copyright infringements, legal claims, or losses resulting from the publication or use of this content.*